शिक्षा संवाद
2021, 8 (1-2): 23-34
ISSN: 2348-5558
©2021, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

कहानी

प्लेग की चुड़ैल

मास्टर भगवानदास

गत वर्ष जब प्रयाग में प्लेग घुसा और प्रतिदिन सैकड़ों ग़रीब और अनेक महाजन, ज़मींदार, वकील, मुख़्तार के घरों के प्राणी मरने लगे तो लोग घर छोड़कर भागने लगे। यहाँ तक कि कई डॉक्टर भी दूसरे शहरों को चले गए। एक मुहल्ले में ठाकुर विभवसिंह नामी एक बड़े ज़मींदार रहते थे। उन्होंने भी अपने इलाक़े पर, जो प्रयाग से 5 मील की दूरी पर था, चले जाने की इच्छा की। सिवा उनकी स्त्री और एक पाँच वर्ष के बालक के और कोई संबंधी उनके घर में नहीं था। रविवार को प्रात:काल ही सब लोग इलाक़े पर चलने की तैयारी करने लगे। जल्दी में उनकी स्त्री ने ठंडे पानी से नहा लिया। बस नहाना था कि ज्वर चढ़ आया। हकीम साहब बुलाए गए और दवा दी गई। पर उससे कुछ लाभ न हुआ। सायं-काल को गले में एक गिलटी भी निकल आई। तब तो ठाकुर साहब और उनके नौकरों को अत्यंत व्याकुलता हुई। डॉक्टर साहब बुलाए गए। उन्होंने देखते ही कहा कि प्लेग की बीमारी है, आप लोगों को चाहिए कि यह घर छोड़ दें। यह कहकर वह चले गए। अब ठाकुर साहब बड़े असमंजस में पड़े। न तो उनसे वहाँ रहते ही बनता था, न छोड़ के जाते ही बनता था। वह मन में सोचने लगे, यदि यहाँ मेरे ठहरने से बहू जी को कुछ लाभ हो तो मैं अपनी जान भी ख़तरे में डालूँ। परंतु इस बीमारी में दवा तो कुछ काम ही नहीं करती, फिर मैं यहाँ ठहरकर अपने प्राण क्यों खोऊँ। यह सोच जब वह चलने के लिए खड़े होते थे तब वह बालक जिसका नाम नवलसिंह था, अपनी माता के मुँह की ओर देखकर रोने लगता था और वहाँ से जाने से इनकार करता था। ठाकुर साहब भी प्रेम के कारण मूक अवस्था को प्राप्त हो जाते थे और विवश होकर बैठे रहते थे। ठाकुर साहब तो बड़े सहृदय सज्जन पुरुष थे, फिर इस समय उन्होंने ऐसी निष्ठुरता क्यों दिखलाई, इसका कोई कारण अवश्य था, परंतु उन्होंने उस समय उसे किसी को नहीं बतलाया। हाँ, वह बार-बार यही कहते थे कि स्त्री का प्राण तो जा ही रहा है, इसके साथ मेरा भी प्राण जावे तो कुछ हानि नहीं, पर मैं यह चाहता हूँ कि मेरा पुत्र तो बचा रहे। मेरा कल तो न लुप्त हो जावे। पर वह बिचारा बालक इन बातों को क्या समझता था! वह तो मातृ-भक्ति के बंधन में ऐसा बँधा था कि रात-भर अपनी माता के पास बैठा रोता रहा।

जब प्रात:काल हुआ और ठकुराइन जी को कुछ चेत हुआ तो उन्होंने आँखों में आँसू भर के कहा, "बेटा नवलसिंह! तुम शोक मत करो, तुम किसी दूसरे मकान में चले जाओ, मैं अच्छी होकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगी।" पर वह लड़का न तो समझाने ही से मानता था, न स्वयं ऐसे स्थान पर ठहरने के परिणाम को जानता था। बहू जी तो यह कहकर फिर अचेत हो गईं, पर बालक वहीं बैठा सिसक-सिसककर रोता रहा। थोड़ी देर बाद फिर डॉक्टर, वैद्य, हकीम आए, पर किसी की दवा ने काम न किया। होते-होते इसी तरह दोपहर हो गई थी। तीसरे पहर को बहू जी का शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया और डॉक्टर ने मुख की चेष्टा दूर ही से देखकर कहा, "बस अब इनका देहांत हो गया। उठाने की फ़िक्र करो।" यह सुन सब नौकरानियाँ और नौकर रोने लगे और पड़ोस के लोग एकत्रित हो गए। सबके मुख से यही बात सुन पड़ती थी, "अरे क्या निर्दयी काल ने इस अबला का प्राण ले ही डाला, क्या इसकी सुंदरता, सहृदयता और अपूर्व पतिव्रत धर्म का कुछ भी असर उस पर नहीं हुआ, क्या इस क्रूर काल को किसी के भी सदगुणों पर विचार नहीं होता!!"

एक पड़ोसी, जो कवि था, यह सवैया कहकर अपने शोक का प्रकाश करने लगा—
सूर को चूरि करै छिन मैं, अरु कादर को धर धूर मिलावै।

कोविदहूँ को विदारत है, अरु मूरख को रख गाल चबावै॥
रूपवती लखि मोहत नाहिं, कुरूप को काटि तूँ दूर बहावै।

है कोउ औगुण वा गुण या जग निर्दय काल जो तो मन भावै॥

स्त्रियाँ कहने लगीं, "हा हा, देखो, वह बालक कैसा फूट-फूटकर रो रहा है! क्या इसकी ऐसी दीन दशा पर भी उस निठुर काल को दया नहीं आई? इस अवस्था में बिचारा कैसे अपनी माता के वियोग की व्यथा सह सकेगा! हा! इस अभागे पर बचपन ही में ऐसी विपत्ति आ पड़ी!" ठाकुर साहब तो मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े थे। नौकरों ने उनके मुँह पर गुलाब जल छिड़का और थोड़ी देर में वह सचेत हुए। उनकी मित्र-मंडली में से तो कई महाशय उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे। उनके पड़ोसियों ने जो वहाँ एकत्र हो गए थे, यह सम्मति दी कि स्त्री के मृत शरीर को गंगा तट पर ले चलकर दाह क्रिया करनी चाहिए। परंतु डॉक्टर साहब ने, जो वहाँ फिर लौटकर आए थे, कहा कि पहले तो इस मकान को छोड़कर दूसरे में चलना चाहिए, पीछे और सब खटराग किया जावेगा। ठाकुर साहब को भी वह राय पसंद आई, क्योंकि उन्होंने तो रात ही से भागने का इरादा कर रखा था, वह तो केवल उस लड़के के अनुरोध से रुके हुए थे। परंतु क्या उस लड़के को उस समय भी वहाँ से ले चलना सहज था? नहीं, वह तो

अपनी मृत माता के निकट से जाना ही नहीं चाहता। बार-बार उसी पर जाकर गिर पड़ता था और उसकी अधखुली आँखों की ओर देख-देखकर रोता और 'माता! माता' कहकर पुकारता था। उसका रुदन सुनकर देखने वालों की छाती फटती थी और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहती थी। अंत में ठाकुर साहब ने उस बालक को पकड़कर गोद में उठा लिया और गाड़ी में बिठलाकर दूसरे मकान की ओर रवाना हुए। अलबत्ता चलती बार ठाकुर साहब ने स्त्री के मृत शरीर की ओर देखकर कुछ अँग्रेज़ी में कहा था, जिसका एक शब्द मुझे याद है, फेअरवेल। नौकर सब ठाकुर साहब ही के साथ रवाना हो गए, परंतु उनका एक पुराना नौकर उस मकान की रक्षा के लिए वहीं रह गया।

पड़ोसी लोग भी इस दुर्घटना से दु:खी होकर अपने घरों को लौट गए, परंतु उनके एक पड़ोसी के हृदय पर इन सब बातों का ऐसा असर हुआ कि वह वहीं बैठा रह गया और मन में सोचने लगा कि ऐसी दशा में पड़ोसी का धर्म क्या है? इस देश का यह रिवाज है कि जब तक मुहल्लें में मुर्दा पड़ा रहता है तब तक कोई नहाता-खाता नहीं। जब उसकी दाह क्रिया का सब सामान ठीक हो जाता है और लोग उसको वहाँ से उठा ले जाते हैं, तब पड़ोसी लोग अपने-अपने दैनिक कार्यों को करने में तत्पर होते हैं। परंतु यहाँ का यह हाल देखकर वह बहुत विस्मित होता था और सोचता था कि यदि ठाकुर साहब भय के मारे अपने इलाक़े पर भाग गए तो मृतक की क्या दशा होगी। क्या इस पुण्यवती स्त्री का शरीर ठेले पर लद के जाएगा? उसने उस बुड्ढे नौकर के आगे अपनी कल्पनाओं को प्रकाशित किया। उसने उत्तर दिया कि अभी ठाकुर साहब की प्रतीक्षा करनी चाहिए, देखें वह क्या आज्ञा देते हैं।

वह पड़ोसी भी यही यथार्थ समझ के चुप हो गया और संसार की असारता और प्राणियों के प्रेम की निर्मूलता पर विचार करने लगा। उस समय उसे नानक जी का यह पद याद आया, 'सबै कुछ जीवत का ब्योहार,' और सूरदास का 'कुसमय मीत काको कौन' भी स्मरण आया। पर समय की प्रतिकूलता देख वह इन पदों को गा न सका। मन-ही-मन गुनगुनाता रहा। इतने ही में ठाकुर साहब के दो नौकर वापस आए और उन्होंने बूढ़े नौकर से कहा कि हम लोग पहरे पर मुकर्रर हैं और तुमको ठाकुर साहब ने बुलाया है, वह मत्तन सौदागर के मकान में ठहरे हैं, वहीं तुम जाओ। उस बुड्ढ़े का नाम सत्यसिंह था।

जब वह उक्त स्थान पर पहुँचा तो उसने देखा कि ठाकुर साहब के चंद मित्र, जो वकील, महाजन और अमले थे, इकट्ठे हुए हैं और वे सब एकमत होकर यही कह रहे हैं कि आप अपने इलाक़े पर चले जाइए; दाह-क्रिया के झंझट में मत पड़िए, यह कर्म आपके नौकर कर देंगे, क्योंकि जब प्राण बचा रहेगा तो धर्म की रक्षा हो जाएगी। तब ठाकुर साहब ने इस विषय में पुरोहित जी की सम्मति पूछी, उन्होंने भी उस समय हाँ में हाँ मिलाना ही उचित समझा और कहा कि धर्मशास्त्रानुसार ऐसा हो सकता है; इस समय

चाहे जो दग्ध कर दे, इसके अनंतर जब सुभीता समझा जाएगा, आप एक पुतला बनाकर दग्ध-क्रिया कर दीजिएगा।

इतना सुनते ही ठाकुर साहब ने पुरोहित जी ही से कहा, "यह तीस रुपए लीजिए और मेरे आठ नौकर साथ ले जाकर कृपा करके आप दग्ध क्रिया करवा दीजिए और मुझे इलाक़े पर जाने की आज्ञा दीजिए।" यह कहकर लड़के को साथ लेकर और मित्रों से विदा होकर ठाकुर साहब इलाक़े पर पधारे और पुरोहित जी सत्यसिंह प्रभृति आठ नौकरों को लेकर उनके घर पर गए। सीढ़ी बनवाते और कफ़न इत्यादि मँगवाते सायंकाल हो गया। जब नाइन बहू जी को कफ़नाने लगी, उसने कहा, "इनका शरीर तो अभी बिल्कुल ठंडा नहीं हुआ है और आँखें अधखुली-सी हैं, मुझे भय मालूम होता है।" पुरोहित जी और नौकरों ने कहा, "यह तेरा भ्रम है, मुर्दे में जान कहाँ से आई। जल्दी लपेट ताकि गंगा तट ले चलकर इसका सतगत करें। रात होती जाती है, क्या मुर्दे के साथ हम लोगों को भी मरना है! ठाकुर साहब तो छोड़ ही भागे, अब हम लोगों को इन पचड़ों से क्या मतलब है, किसी तरह फूँक-फाँककर घर चलना है। क्या इसके साथ हमें भी जलना है?"

सत्यसिंह ने कहा, "भाई, जब नाइन ऐसा कहती है, तो देख लेना चाहिए, शायद बहू जी की जान न निकली हो। ठाकुर साहब तो जल्दी से छोड़ भागे, डॉक्टर दूर ही से देखकर चला गया, ऐसी दशा में अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिए।"

सब नौकरों ने कहा, "सत्यसिंह, तुम तो सठिया गए हो, ऐसा होना असंभव है। बस, देर न करो, ले चलो।" यह कहकर मुर्दे को सीढ़ी पर रख कंधे पर उठा, सत्यसिंह का वचन असत्य और रामनाम सत्य कहते हुए दशाश्वमेध घाट की ओर ले चले। रास्तें में एक नौकर कहने लगा, सात बज गए हैं, दग्ध करते-करते तो बारह बज जावेंगे! दूसरे ने कहा, "फूँकने में निस्संदेह सारी रात बीत जाएगी।" तीसरे ने कहा, "यदि ठाकुर साहब कच्चा ही फेंकने को कह गए होते तो अच्छा होता।" चौथे ने कहा, "मैं तो समझता हूँ कि शीतला, हैजा, प्लेग से मरे हुए मृतक को कच्चा ही बहा देना चाहिए। "पाँचवें ने कहा, "यदि पुरोहित जी की राय हो तो ऐसा ही कर दिया जाए।" पुरोहित जी ने, जिसे रात्रि समय श्मशान में जाते डर मालूम होता था, कहा, "जब पाँच पंच की ऐसी राय है तो मेरी भी यही सम्मति है और विशेषकर इस कारण कि जब एक बार ठाकुर साहब को नरेनी अर्थात् पुत्ला बनाकर जलाने का कर्म करना ही पड़ेगा तो इस समय दग्ध करना अत्यावश्यक नहीं है।" छठे और सातवें ने कहा कि बस चलकर मुर्दे को कच्चा ही फेंक दो, ठाकुर साहब से कह दिया जाएगा कि जला दिया गया, परंतु सत्यसिंह जो यथानाम तथा गुण बहुत सच्चा और ईमानदार नौकर था, कहने लगा, "मैं ऐसा करना उचित नहीं समझता, मालिक का कहना और मुर्दे की गति करना हमारा धर्म है। यदि आप लोग मेरा

कहना न मानें तो मैं यहीं से घर लौट जाता हूँ, आप लोग चाहे जैसा करें और चाहे जैसा ठाकुर साहब से कहें, यदि वह मुझसे पूछेंगे तो मैं सच-सच कह दूँगा। "यह सुनकर नौकर घबराए और कहने लगे कि भाई 30 रुपए में से, जो ठाकुर साहब ने दिए हैं, तुम सबसे अधिक हिस्सा ले लो लेकिन यह वृत्तांत ठाकुर साहब से मत कहना। सत्यसिंह ने कहा, "मैं हरामख़ोर नहीं हूँ। ऐसा मुझसे कदापि नहीं होगा, लो मैं घर जाता हूँ, तुम लोगों के जी में जो आए सो करना।"

जब यह कहकर वह बुड्ढा नौकर चला गया तो बाक़ी नौकर जी में बहुत डरे और पुरोहित जी से कहने लगे, "अब क्या करना चाहिए, बुड्ढा तो सारा भेद खोल देगा और हम लोगों को मौक़ूफ़ करा देगा।" पुरोहित जी ने कहा, "तुम लोग कुछ मत डरो, अच्छा हुआ कि बुड्ढ़ा चला गया, अब चाहे जो करो; ठाकुर साहब से मैं कह दूँगा कि मुर्दा जला दिया गया। वह मेरा विश्वास बुड्ढ़े से अधिक करते हैं; 30 में से 7 तो सीढ़ी और कफ़न में ख़र्च हुए हैं। दो-दो रुपए तुम सात आदमी ले लो, बाकी 9 रुपए मुझे नवग्रह का दान दे दो, मुर्दे को जल में डालकर राम-राम कहते हुए कुछ देर रास्ते में बिताकर कोठी पर लौट जाओ, ताकि पड़ोसी लोग समझें कि अवश्य ये लोग मुर्दे को जला आए।

" यह सुनकर वे सब प्रसन्न हुए और 23 रुपए आपस में बाँटकर मुर्दे को ऐसे अवघट घाट पर ले गए जहाँ न कोई डोम कफ़न माँगने को था, न कोई महाब्राह्मण दक्षिणा माँगने को। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ऐसी जल्दी की कि सीढ़ी-समेत मुर्दे को जल में डाल दिया और राम-राम कहते हुए कगारे पर चढ़ आए क्योंकि एक तो वहाँ अँधेरी रात वैसे ही भयानक मालूम होती थी, दूसरे वे लोग यह डरते थे कि कहीं सरकारी चौकीदार आकर गिरफ़्तार न कर ले, क्योंकि सरकार की तरफ़ से कच्चा मुर्दा फेंकने की मनाही थी। निदान वे बे-ईमान नौकर इस तरह स्वामी की आज्ञा भंग करके उस अविश्वसनीय पुरोहित के साथ घर लौटे।

अब सुनिए उस मुर्दे की क्या गति हुई। उस सीढ़ी के बाँस ऐसे मोटे और हल्के थे जैसे नौका के डाँड और उस स्त्री का शरीर कृशित होकर ऐसा हल्का हो गया था कि उसके बोझ से वह सीढ़ी पानी में नहीं डूबी और इस तरह उतराती चली गई जैसे बाँसों का बेड़ा बहता हुआ चला जाता है। यदि दिन का समय होता तो किनारे पर के लोग अवश्य इस दृश्य से विस्मित होते और कौवे तो कुछ खोद-खाद मचाते। परंतु रात का समय था, इससे वह शव-सहित सीढ़ी का बेड़ा धीरे-धीरे बहता हुआ त्रिवेणी पार करके प्राय: पाँच मील की दूरी पर पहुँचा। पर यह तो कोई अचंभे की बात न थी। अत्यंत आश्चर्यजनक घटना तो यह हुई कि गंगाजल की शीतलता उस सोपान-स्थित शरीर के लिए, जिसे लोगों ने निर्जीव समझ लिया था, ऐसी उपकारी हुई कि जीव का जो अंश उसमें रह गया था वह जग उठा और बहू जी

को कुछ होश आया। परंतु अपने को इस अद्भुत दशा में देख वह भौचक-सी रह गई। उनके शरीर का यह हाल था कि प्राणांतक ज्वराग्नि तो बुझ गई थी, परंतु गले में की गिलटी ऐसी पीड़ा दे रही थी कि उसके कारण वह कभी-कभी अचेत-सी हो जाती थी। परंतु जब उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की कृपा होती है तो अनायास प्राणरक्षा के उपाय उपस्थित हो जाते हैं। निदान वह सीढ़ी बहते-बहते ऐसी जगह आ पहुँची जहाँ करौंदे का एक बड़ा भारी पेड़ तट पर खड़ा था और उसकी एक घनी डाली झुककर जल में स्नान कर रही थी और अपने क्षीरमय फल-फूल गंगाजी को अर्पण कर रही थी। वह सीढ़ी जाकर डाली से टकराई और उसी में उलझकर रुक गई। और उस डाली में का एक काँटा बहू जी की गिल्टी में इस तरह चुभ गया जैसे किसी फोड़े में नश्तर। गिल्टी के फूटते ही पीड़ाजनक रुधिर निकल गया और बहू जी को फिर चेत हुआ। झट उन्होंने अपना मुँह फेरकर देखा तो अपने को उस हरी शाख़ा की शीतल छाया में ऐसा स्थिर और सुखी पाया जैसे कोई श्रांतपथिक हिंडोले पर सोता हो।

सूर्योदय का समय था, जल में किनारे की ओर कमल प्रफुल्लित थे। और तटस्थ वृक्षों पर पक्षीगण कलरव कर रहे थे। उस अपूर्व शोभा को देखकर बहू जी अपने शरीर की दशा भूल गईं और मन में सोचने लगीं कि क्या मैं स्वर्गलोक में आ गई हूँ, या केवल स्वप्न अवस्था में हूँ, और यदि मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूँ तो भी परमेश्वर मुझे इसी सुखमय अवस्था में सर्वदा रहने दे। परंतु इस संसार में सुख तो केवल क्षणिक होता है :

"सुख की तो बौछार नहीं है, दुख का मेह बरसता है।
यह मुर्दे का गाँव रे बाबा, सुख महँगा दुख सस्ता है॥"

थोड़ी ही देर बाद पक्षीगण उड़ गए और लहरों के उद्वेग से कमलों की शोभा मंद हो गई। सीढ़ी का हिंडोलना भी अधिक हिलने लगा, जिससे कृशित शरीर को कष्ट होने लगा, बहू जी का जी ऊबने लगा। उनका वश क्या था, शरीर में शक्ति नहीं थी कि तैरकर किनारे पर पहुँचें, हालाँकि चार ही हाथ की दूरी पर एक छोटा-सा सुंदर घाट बना हुआ था। वह मन में सोचने लगीं कि शायद मुझको मृतक समझ मेरे पति ने मुझे इस तरह बहा दिया है, परंतु उनको ऐसी जल्दी नहीं करनी चाहिए थी; मेरे शरीर की अवस्था की जाँच उन्हें भली-भाँति कर लेनी चाहिए थी; भला उन्होंने मेरा तयाग किया तो किया, उनको बहुत-सी स्त्रियाँ मिल जाएँगी, परंतु मेरे नादान बच्चे की क्या दशा हुई होगी! अरे, वह मेरे वियोग के दु:ख को कैसे सह सकता होगा! हा! वह कहीं रो-रो के मरता होगा! उसको मेरे सदृश माता कहाँ मिल सकती है, विमाता तो उसको और भी दु:खदायिनी होगी! हे परमेश्वर! यदि मैं मृत्युलोक ही में हूँ तो मेरे बालक को शाँति और मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं इस दशा से मुक्त होकर अपने प्राणप्रिय पुत्र से

मिलूँ। इतना कहते ही एक ऐसी लहर आई कि कई घूँट पानी उनके मुख में चला गया। गंगाजल के पीते ही शरीर में कुछ शाँति-सी आ गई और पुत्र के मिलने की उत्कंठा ने उनको ऐसा उत्तेजित किया कि वह हाथों से धीरे-धीरे उस सीढ़ी-रूपी नौका को खेकर किनारे पर पहुँच गई। परंतु श्रम से मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। कुछ देर बाद जब होश आया तो उस स्थान की रमणीयता देखकर फिर उन्हें यही जान पड़ा कि मैं मरने के पश्चात स्वर्गलोक में आ गई हूँ। गंगाजी के उज्जवल जल का मंद-मंद प्रवाह आकाशगंगा की शोभा दिखाता था और किनारे-किनारे के स्थिर जल में फूले हुए कमल ऐसे देख पड़ते थे जैसे आकाश में तारे—

दोहा : गंगा के जल गात पै दल जलजात सुहात।
जैसे गोरे देह पे नील वस्त्र दरसात॥

तट पर अंब-कदंब-अशोकादि वृक्षों की श्रेणियाँ दूर तक चली गई थीं और उनके समीप के उपवन की शोभा 'जहाँ बसंत ऋतु रह्यौ लुभाई' ऐसी मनोहर थी कि मनुष्य का चित्त देखते ही मोहित हो जाता था। कहीं करौंदे, कहीं कोरैया, इंद्र बेला आदि के वृक्ष अपने फूलों की सुगंध से स्थानों को सुवासित कर रहे थे, कहीं बेला, कहीं चमेली, केतकी, चंपा के फूलों से लदी हुई डालियाँ एक-दूसरे से मिली हुई यूँ देख पड़ती थीं जैसे पुष्पों की माला पहने हुए सुंदर बालिकाएँ एक से एक हाथ मिलाए खड़ी हैं। उनके बीच-बीच में ढाक के वृक्ष लाल फूलों से ढके हुए यूँ देख पड़ते थे जैसे संसारियों के समूह में विरक्त बनवासी खड़े हों। इधर तो इन विरक्तों के रूप ने बहू जी को अपनी वर्तमान दशा की ओर ध्यान दिलाया, उधर कोकिला की कूक ने हृदय में ऐसी हूक पैदा की कि एक बार फिर बहू जी पति के वियोग की व्यथा से व्याकुल हो गईं और कहने लगीं, कि इस शोक-सागर में डूबने से बेहतर यही होगा कि गंगाजी में डूब मरूँ, फिर सोचा कि पहले यह तो मैं विचार लूँ कि मेरा मरना भी संभव है या नहीं। यदि मैं स्वर्गलोक के किसी भाग में आ गई हूँ तो यहाँ मृत्यु कैसे आ सकती है, परंतु यह स्वर्गलोक नहीं जान पड़ता क्योंकि स्वर्ग में शारीरिक और मानसिक दु:ख नहीं होते, और मैं यहाँ दोनों से पीड़ित हो रही हूँ। इनके अतिरिक्त मुझे क्षुधा भी मालूम होती है।

बस निस्संदेह मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूँ। यदि मैं मनुष्य ही के शरीर में अब तक हूँ और मरकर पिशाची नहीं हो गई हूँ तो मेरा धर्म यही है कि मैं अपने अल्पवयस्क बालक को ढूँढ़कर गले से लगाऊँ, परंतु मैं शारीरिक शक्तिहीन अबला इस निर्जन स्थान में किसे पुकारूँ, किधर जाऊँ! "हे करुणामय जगदीश! तू ही मेरी सुध ले। यदि तूने द्रौपदी, दम्यंती आदि अबलाओं की पुकार सुनी है तो मेरी भी सुन।" यह कहकर गंगाजी की ओर मुँह फेर घाट पर बैठ गईं और जल की शोभा देखने लगीं।

इतने ही में दक्षिण दिशा से एक दासी हाथ में घड़ा लिए गंगाजल भरने को आई। जब उसने पीछे से ही देखा कि कोई स्त्री कफ़न का श्वेत कपड़ा पहने अकेली चुपचाप बैठी है उसके मन में कुछ शंका हुई। जब उसने देखा कि नीचे पानी में एक मुर्दावाली सीढ़ी भी तैर रही है, तब तो उसे अधिक भय मालूम हुआ और उसने सोचा कि अवश्य कोई मरी हुई स्त्री चुड़ैल होकर बैठी है। जब उसके पाँव की आहट पाकर बहू जी ने उसकी ओर मुँह फेरा और गिड़गिड़ाकर उससे कुछ पूछने लगी तो वह उनकी खोड़राई हुई आँखों और अधमरी स्त्री की-सी चेष्टा देखकर भय से चिल्ला उठी और चुड़ैल-चुड़ैल, करके वहीं घड़ा पटककर भागी। बहू जी ने गला फाड़-फाड़कर उसे बहुत पुकारा, पर वह न लौटी और अपने ग्राम में ही जाकर उसने दम लिया। जब उसकी भयभीत दशा देखकर और स्त्रियों ने उसका कारण पूछा तब उसने सब वृत्तांत कह सुनाया, परंतु वह ऐसी डर गई थी कि बार-बार घाट ही की ओर देखती थी कि कहीं वह चुड़ैल पीछे-पीछे आती न हो।

उस समय ग्राम के कुछ मनुष्य खेत काटने चले गए थे और कुछ ठाकुर विभवसिंह के साथ टहलने निकल गए थे। केवल स्त्रियाँ और लड़के गाँव में रह गए थे। उनमें से किसी को यह साहस नहीं होता था कि घाट पर जाकर उस दासी की अपूर्व कथा की जाँच करे। चुड़ैल का नाम सुनते ही वे सब ऐसी डर गईं थीं कि अपने-अपने लड़कों को घर में बंद करने लगीं कि कहीं चुड़ैल आकर उन्हें चबा न डाले। उस समय ठाकुर साहब का लड़का नवलसिंह भी अपनी मृत माता का स्मरण कर-कर नेत्रों से आँसू बहाता हुआ इधर-उधर घूम रहा था और लड़कों के साथ खेलने की उसे इच्छा न होती थी। जब एक स्त्री ने उससे भी कहा कि भैया, तुम अपने बँगले में छिप जाओ, नहीं तो वह चुड़ैल आकर तुम्हें पकड़ लेगी, वह आश्चर्यचकित होकर पूछने लगा कि चुड़ैल कैसी होती है? यदि वह यहाँ आवेगी भी तो मुझे क्यों पकड़ेगी, मैंने उसकी कोई हानि नहीं की है।

इधर तो यह बातें हो रही थीं, उधर बहू जी निराश होकर फिर मन में सोचने लगीं कि यह तो निश्चय है कि मैं अभी तक मृत्युलोक में ही हूँ पर क्या वास्तव में मेरा पुनर्जन्म हुआ है? क्या मैं सचमुच चुड़ैल हो गई हूँ, जैसा कि यह स्त्री मुझे देखकर कहती हुई भागी है! अवश्य इसमें कुछ भेद है वरना मैं इन कृशित अंगों पर कफ़न का श्वेत वस्त्र लपटाए, काले नागों के से बालों के लट लटकाए हुए इस अज्ञात निर्जन स्थान में कैसे आ जाती! हे विधाता! मैंने कौन-सा पाप किया जो तूने मुझे चुड़ैल का जन्म दिया! क्या पतिव्रत धर्म का यही फल है? अब मैं इस अवस्था में अपने प्यारे पुत्र को कहाँ पाऊँगी, और यदि पाऊँगी तो कैसे उसे गले लगाऊँगी? वह तो मेरी डरावनी सूरत देखते ही भागेगा, पर जो हो, मैं उसे अवश्य तलाश करूँगी और यदि वह मुझसे सप्रेम नहीं मिलेगा तो उसको भी इसी दशा में परिवर्तित करने की चेष्टा करूँगी। यह सोचकर वह धीरे-धीरे उसी ओर चली, जिधर वह दासी भागी थी।

दुर्बलता के मारे सारा देह काँपता था, पर क्या करे, क्षुधा के मारे रहा नहीं जाता था, निदान खिसकते-खिसकते उपवन डाककर वह वाटिका में पहुँची जिसमें अमरूद, नारंगी, फालसा, लीची, संतरा इत्यादि के पेड़ लगे हुए थे और क्यारियों में अनेक प्रकार के अँग्रेज़ी और हिंदुस्तानी फूल फले हुए थे। वाटिका के दक्षिण ओर एक छोटा-सा बँगला मालूम होता है जैसा मेरे इलाक़े पर के बग़ीचे में बना हुआ है; क्या मैं ईश्वर की कृपा से अपनी ही वाटिका में तो नहीं आ गई हूँ! अरे, यह पुष्प-मंडल भी तो वैसा ही जान पड़ता है जिसमें तीन वर्ष हुए नवलजी को गोद में लेकर खिलाती थी। मैं जब यहाँ आई थी तो ग्राम की स्त्रियों से सुना था कि निकट ही गंगाजी का घाट है। मैंने ठाकुर साहब से वहाँ स्नान करने की आज्ञा माँगी थी, परंतु उन्होंने नहीं दी, क्या उसी पाप का तो यह फल नहीं है कि मैं इस दशा को प्राप्त हुई हूँ! परंतु उसमें मेरा क्या दोष था! स्त्री के लिए तो पति की आज्ञा पालन करना ही परम धर्म है। यह फल मेरे किसी और जन्म के पापों का मालूम होता है।

इसी तरह मन में अनेक कल्पनाएँ करती हुई बहू जी एक नारंगी के पेड़ के नीचे बैठ गईं और लटकी हुई डाल से एक नारंगी तोड़कर अपनी प्रज्वलित क्षुधाग्नि को बुझाना चाहती थीं कि इतने में नवलसिंह घूमता-घूमता उसी स्थापन पर आ गया, उसको देखते ही बहू जी की भूख-प्यास जाती रही। जैसे मृगी अपने खोए हुए शावक को पाकर उसकी ओर दौड़ती है वैसे ही बहू जी झपटकर नवलसिंह से लिपट गई और 'बेटा नवलजी! बेटा नवलजी' कहकर उसका मुख चूमने लगी। उस समय नवलसिंह की अपूर्व दशा थी। कभी तो बहू जी की डरावनी सूरत देखकर भय से भागना चाहता था, कभी माता के मुख की आकृति स्मरण करके प्रेमाश्रु बहाने लगता था और भोलेपन से पूछता था कि माता, तुम मर के फिर जी उठी हो और चुड़ैल हो गई हो? हम लोग तो तुमको घर ही पर छोड़ आए थे, तुम अकेली गिरती-पड़ती यहाँ कैसे आ गई हो? बहू जी ने कहा, "बेटा, मैं नहीं जानती कि मैं कैसे इस दशा को प्राप्त हुई हूँ। यदि मेरा शरीर बदल गया है और मैं चुड़ैल हो गई हूँ तो भी मेरा हृदय पहिले ही का-सा है और मैं तुम्हारी ही तलाश में खिसकते-खिसकते इधर आई हूँ।"

इधर तो इस प्रकार प्रेमालिंगन और प्रश्तोत्तर हो रहा था, उधर ग्राम्य स्त्रियों ने दूर ही से घटना देखकर हाहाकार मचाया और कहने लगीं, "अरे, नवल जी को चुड़ैल ने पकड़ लिया! चलियो! दौड़ियो! बचाइयो! अरे, यह क्या अनर्थ हुआ! हम लोग क्या जानती थीं कि वह डाइन वाटिका में आ बैठी है। नहीं तो नवलजी को क्यों उधर जाने देतीं।" इसी तरह सब दूर ही से कौआ-रोर मचा रही थीं, परंतु डर के मारे कोई निकट नहीं जाती थी।

इतने ही में विभवसिंह और उनके साथ जो गाँव के आदमी टहलने गए थे, वापस आ गए। यह कोलाहल देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दासी के मुँह से वृत्तांत सुनकर ठाकुर साहब ने कहा, "मुझे प्रेत योनि में तो विश्वास नहीं है। पर ईश्वर की अद्भुत माया है। शायद सच ही हो।" यह कहकर और झट बँगले में से तमंचा लेकर वह उसी नारंगी के पेड़ की ओर झपटे, जहाँ नवलसिंह को चुड़ैल पकड़े हुए थी और गाँववाले भी लाठी ताने उसी ओर दौड़े। पिता को आते देखकर लड़के ने चाहा कि अपनी माता के हाथों से अपने को छुड़ाकर और दौड़कर अपने पिता से शुभ संदेश कहे। लेकिन उसकी माता उसे नहीं छोड़ती थी। ठाकुर साहब ने दूर ही से यह हाथापाई देखकर समझा कि अवश्य चुड़ैल उसे ज़ोर से पकड़े है और ललकारकर कहा, "बेटा, घबराओ मत, मैं आया।" जब पास पहुँचे, उन्होंने चाहा कि चुड़ैल को गोली मारकर गिरा दें। पर लड़के ने चिल्ला के कहा, "इन्हें मारो मत, मारो मत, माता है माता।" ठाकुर साहब को उस घबराहट में लड़के की बात समझ में नहीं आई और चूँकि वह पिस्तौल तान चुके थे, उन्होंने फ़ायर कर ही दिया। आवाज़ होते ही बहू जी अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं और लड़का चौंककर ज़मीन पर बैठ गया। ठाकुर साहब ने उसे गोद में उठा लिया और कहा, "बेटा, डरो मत, अब तुम बच गए। बताओ तो यह कौन है, क्या वास्तव में चुड़ैल है?" बहू जी को अचेत देखकर अब आदमी चिल्लाकर कहने लगे, "चुड़ैल मर गई, चुड़ैल मर गई।" यह सुनकर स्त्रियाँ भी समीप आईं और चारों ओर खड़ी हो देखने लगीं। उनमें से वह दासी बोली, "यही दुष्टिन चुड़ैल है जो घाट पर बैठी थी और यहाँ आकर नवलजी को निगलना चाहती थी।" दूसरी स्त्रियाँ कहने लगीं, "हमने तो सुना था कि डायनों और चुड़ैलों के बड़े-बड़े दाँत और नख होते हैं। इसके तो वैसे नहीं हैं। यह निगोड़ी किस प्रकार की चुड़ैल है!"

एक ने कहा, "यह डाइन की बच्ची है। बढ़ने पर इसके भी दाँत बड़े होते।"

इधर तो यह ठिठोलियाँ हो रही थीं कि उधर जब नवलसिंह को निश्चय हुआ कि माता गोली की चोट से मर गई तो वह शोक के मारे अचेत हो गया। अब सब लोग भयातुर होकर उसकी ओर देखने लगे। कोई कहता था कि यह पिस्तौल की आवाज़ से डर गया है, कोई कहता था कि इसे चुड़ैल लग गई है। निदान जब वह कुछ होश में आया तो रो-रो के कहने लगा, "यह तो मेरी माता है। मैंने तो मना किया था, आपने इन्हें गोली से क्यों मारा?" ठाकुर साहब ने कहा, "तुम्हारी माता तो मर गई और पुरोहित जी की चिट्ठी कल रात ही को आ गई कि उनको गंगा के तट पर ले जाकर जला दिया, यह चुड़ैल तुम्हारी माता कैसे हो सकती है?" लड़के ने कहा, "आप समीप जाकर पहिचानिए तो कि यह कौन है।" ठाकुर साहब ने निकट ध्यान देकर देख पड़ा। जब छाती पर से कपड़ा हटाकर देखा तो मुख की आकृति उनकी स्त्री ही की-सी देख पड़ी और मस्तक पर मस्सा भी वैसा ही देखा तो हृदय पर दो तिल भी वैसे ही देख

पड़े जैसे बहू जी के थे। तब तो ठाकुर साहब बड़े विस्मित हुए और कहने लगे, "क्या आश्चर्य है! यह तो मेरी प्रिय पत्नी ही मालूम होती है।" फिर उन्होंने लड़के से कहा, "बेटा, तुम सोच मत करो, मैंने इन्हें गोली नहीं मारी है। तुमने जब मना किया तो मैंने आकाश की ओर यह समझकर गोली चला दी कि यदि कोई बला होगी तो तमंचे की आवाज़ ही से भाग जाएगी।" लड़के ने कहा, "देखिए, इनके गले में गोली का घाव है, आप कहते हैं कि मैंने गोली नहीं मारी।" ठाकुर साहब ने कहा, "यह तो गिल्टी का घाव है। मेरी गोली तो आकाश में तारा हो गई।" इसके अनंतर ठाकुर साहब ने सब लोगों को वहाँ से हटा दिया और स्वयं कुछ दूर पर खड़े होकर गाँव की नाइन से कहा, "तुम बहू जी के सब अंगों को अच्छी तरह पहचानती हो, पास आकर देखो तो कि यह वही है, कोई दूसरी स्त्री तो नहीं है।" नाइन डरते-डरेते पास गई और आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। इतने में बहू जी को कुछ होश आया और बहू ज्योंही उठके बैठने लगीं त्यों ही नाइन भाग खड़ी हुई। बहू जी ने उसे पहचानकर कहा, "अरे बदमिया, मेरा बच्चा कहाँ गया? नवल जी को जल्द बुला नहीं तो मेरा प्राण जाता है। ठाकुर साहब तो मेरे प्राण ही के भूखे हैं। प्रयागजी में मुझे बीमार छोड़कर भाग आए।

जब मैं किसी तरह यहाँ आई तो मुझ पर गोली चलाई। न जाने मुझसे क्या अपराध हुआ है। यदि प्लेग से मरकर मैं चुड़ैल हो गई हूँ तो इस प्रेत शरीर से भी मैं उनकी सेवा करने को तैयार हूँ। यदि वह मेरी इस वर्तमान दशा से घृणा करते हैं तो मुझसे भी यह तिरस्कार नहीं सहा जाता, मैं जाकर गंगा जी में डूब मरूँगी। पर एक बार मेरे बच्चे को तो बुला दे, मैं उसे गले तो लगा लूँ। अरे उसे छोड़कर मुझसे कैसे जिया जाएगा? हे परमेश्वर, तू यहीं मेरा प्राण ले ले।" यह कहकर वह उच्च स्वर से रोने लगी। ठाकुर साहब से ये सच्चे प्रेम से भरे हुए वियोग के वचन नहीं सहे गए। उनका हृदय गदगद हो गया, रोमांच हो आया और आँखों से आँसू गिरने लगे।

झट दौड़कर उन्होंने बहू जी को उठा लिया और कहा, "मेरे अपराध को क्षमा करो। मैंने जान-बूझकर तिरस्कार नहीं किया। यदि तुम मेरी पत्नी हो तो चाहे तुम मनुष्य देह में हो या प्रेत शरीर में, तुम हर अवस्था में मुझे ग्राह्य हो, यद्पि मेरे मन का संदेह अभी नहीं गया है। इसकी निवृत्ति का यत्न मैं धीरे-धीरे करता रहूँगा, पर तुमको मैं अभी से अपनी प्रिय पत्नी मानकर ग्रहण करता हूँ। यदि तुम्हारे संसर्ग से मुझे प्लेग-पीड़ा व प्रेत-बाधा भी हो जाए तो कुछ चिंता नहीं, मैं अब किसी आपत्ति से नहीं डरूँगा।" यह कहकर वह बहू जी को अपने हाथों का सहारा देकर लता भवन में ले गए और नवल जी को भी वहीं बुलाकर सब वृत्तांत पूछने लगे।

इतने ही में सत्यसिंह भी शहर से आ गया। जब उसने गाँव वालों से यह अद्भुत कथा सुनी तो वह उसका भेद समझ गया और ठाकुर साहब के सामने जाकर कहने लगा, "महाराज,! अब अपने मन

से शंका दूर कीजिए, यह सचमुच बहू जी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जब कल नाइन इनको कफ़नाने लगी थी तो उसने कहा था कि उनकी देह गर्म है। मैंने इसकी जाँच करने के लिए कहा, पर दुष्ट नौकरों ने न करने दिया और उन्होंने ले जाकर कच्चा ही गंगा जी में फेंक दिया। अच्छा हुआ, नहीं तो अब तक जलकर बहू जी राख हो गई होतीं। मुझे निश्चय है कि बहू जी की जान नहीं निकली थी और गंगा जी की कृपा से वह बहती-बहती इसी घाट पर लगीं और जी उठीं। अब अपना भाग्य सराहिए। इनको फिर से अपनाइए और बधाई बजाइए।"

इतना सुनते ही ठाकुर साहब ने फिर क्षमा माँगी और नि:शंक हो बहूजी को अंक से लगाया और प्रेमाश्रु बहाए। बहूजी भी प्रेम से विह्वल होकर नवल जी को गोद में लेकर बैठ गईं और उनके कंधे पर अपना सिर रख रोने लगीं। जब गाँववालों ने यह वृत्तांत सुना तो वे आनंद से फूल उठे और बहूजी के पुनर्जन्म के उत्सव में मृदंग, मंजीरा और फाग से डफ़ बजाकर नाचने-गाने लगे और स्त्रियाँ सब पान-फूल-मिठाई लेकर दौड़ीं और बहूजी को देवी मानकर उनका पूजन करने और क्षमा माँगने लगीं। बहू जी ने कहा, "इसमें तुम लोगों का कोई दोष नहीं। यह मेरा दुर्भाग्य था जिसने ऐसे दिन दिखाए। अब ईश्वर की कृपा से जैसे मेरे दिन लौटे हैं, वैसे ही सबके लौटें।"

******

स्रोत : पुस्तक : इंदुमती व हिन्दी की अन्य पहली-पहली कहानियाँ (पृष्ठ 78) संपादक : विजयदेव झारी रचनाकार : मास्टर भगवानदास प्रकाशन : इतिहास शोध संस्थान संस्करण : 1994